महर्षि पाणिनि की शिवभक्ति

भारत के व्याकरण-रचयिताओं के कुलगुरु महर्षि पाणिनि के जीवन के महाव्रत की सिद्धि महादेवजी के कृपाकटाक्ष से हुई है। पाणिनीय व्याकरण की उत्पत्ति विद्या-निधान भगवान् शिव से मानी जाती है, जिन्होंने प्रथम सृष्टिकर्ता ब्रह्मा को आविर्भूत किया और तदनन्तर सर्ग के आदि में उन्हें वेद-विद्या का उपेदश दिया-

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तम् ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।। (श्वेता. उ. 6/18)

अर्थात्-जो परमेश्वर निश्चय ही सबसे पहले ब्रह्मा को उत्पन्न करता है और जो निश्चय ही उस ब्रह्मा को समस्त वेदों का ज्ञान प्रदान करता है, उस परमात्मज्ञानविषयक बुद्धि को प्रकट करनेवाले प्रसिद्ध देव परमेश्वर को मैं मोक्ष की इच्छावाला साधक आश्रयरूप में ग्रहण करता हूँ।

वेदों के छः प्रधान अंगों में व्याकरण भी एक अंग है तथा वेदों के अध्ययन में सबसे अधिक उपयोगी होने के कारण यह सबसे प्रधान है। पाणिनीय व्याकरण को 'वेदांग व्याकरण' भी कहा जाता है क्योंकि इस व्याकरण में लौकिक तथा वैदिक दोनों प्रकार के शब्दों का विवेचन किया गया है।

पाणिनि के व्याकरण ग्रन्थ का नाम अष्टाध्यायी है जिसकी रचना चौदह छोटे-छोटे सूत्रों के आधार पर हुई है, जिन्हें माहेश्वर अथवा शिव-सूत्र कहते हैं। इन्हीं सूत्रों की भाँति दूसरे शिव-सूत्र भी हैं, जिनका सम्बन्ध काश्मीरीय शैवागम से है और जिनकी शैवों के महान् आचार्य वसुगुप्त ने भगवान् शंकर की प्रेरणा से रचना की थी।

महर्षि पाणिनि ने किस प्रकार की विचित्र परिस्थिति में इन माहेश्वर सूत्रों को प्राप्त किया, इस सम्बन्ध का इतिहास 'कथा सरित्सागर', 'हरचरित चिन्तामणि', 'बृहत्कथामंजरी' तथा नन्दिकेश्वर की 'काशिकावृत्ति' आदि में उपलब्ध होता है। इन ग्रन्थों में जो कुछ वृत्तान्त मिलता है वह प्रायः मिलता-जुलता सा है। मुख्य घटना अर्थात् शिव से पाणिनि के रचनाशक्ति प्राप्त करने के संबन्ध में कोई मतभेद नहीं है।

आराध्य तपसा तत्र विद्याकामः स शंकरम्।।
प्राप्य व्याकरणं दिव्यं स च विद्यामुखं शुभम्।।

(हरचरितचिन्तामणि, शिवोपासनांक पृ. 148 पर उद्धृत)

पाणिनि की माता का नाम दाक्षी तथा पिता का नाम पणिन् था। इन्होंने बचपन में ही आचार्य उपवर्ष के यहाँ विद्याध्ययन प्रारंभ किया। व्याडि तथा वररुचि(कात्यायन) इनके सहपाठी थे। एक दिन पाणिनि व्याकरण-संबन्धी शास्त्रार्थ में अपने सहाध्यायियों से हार गये, जिससे उनके हृदय को गहरी चोट पहुँची। अपनी बराबरीवालों से हारने के कारण पाणिनि को जो असह्य पीड़ा हुई उसने उनके जीवन को बदल दिया। व्याकरण में पारदर्शी होने के उद्देश्य से तथा वैयाकरणों में श्रेष्ठ बनने की प्रबल आकांक्षा से उन्होंने शिव को प्रसन्न करने हेतु कठोर तप प्रारम्भ किया। भगवान् की कृपा से उनकी अभिलाषा पूर्ण हुई। पाणिनि ने अद्भुत सफलता के साथ एक ऐसे शृंखला-बद्ध व्याकरण की रचना की जिसकी जोड़ का दूसरा व्याकरण भारतीय वाङ्मय में

अभीतक कदाचित् बना ही नहीं।

पाणिनि-संबंधी एक दूसरी कथा भी प्रचलित है। प्रयाग में अक्षयवट के नीचे पाणिनि कठोर तपस्या कर रहे थे। उस समय भगवान् शिव सिद्धों का संघ साथ लिये हुए उनके सामने प्रकट हुए और लगे ताण्डव-नृत्य करने। नृत्य के समय भगवान् ने आनंदातिरेक से चौदह बार डमरू-ध्वनि की[1]। इस अपूर्व एवं अलौकिक घटना से पाणिनि को पहली बार व्याकरण-सूत्र रचने की शक्ति प्राप्त हुई और इसी शक्ति के द्वारा उन्होंने आगे चलकर 'अष्टाध्यायी' का वैज्ञानिक ढंग से निर्माण किया। डमरू के चौदह नादों से ही चौदह मूल सूत्रों की रचना हुई, जिनके आधार पर सारी अष्टाध्यायी प्रणीत हुई। इसीलिये इनको शिव-सूत्र अर्थात् शिव के द्वारा आविर्भूत व्याकरण-सूत्र कहते हैं।

भविष्यपुराण (प्रतिसर्गपर्व 2/अध्याय 31) में पाणिनि के बारे में जो कथा है उसमें कहा गया है कि वे एक बार कणाद के शिष्यों से शास्त्रार्थ में पराजित हो गये थे। इससे उत्पन्न हुई आत्म-ग्लानि तथा वैयाकरण शिरोमणि बनने की अभिलाषा से प्रेरित हो उन्होंने केदारक्षेत्र में भगवान् शिव की प्राप्ति हेतु कठोर तपस्या की। फलस्वरूप शिवजी प्रकट हो गये। प्रकट होने पर उन्होंने उनकी स्तुति की। फलस्वरूप भगवान् शिव ने उन्हें प्रसन्न होकर 'अ इ उ ण' आदि सर्व वर्णमय सूत्रों को उन्हें प्रदान किया।

नन्दिकेश्वर ने अपनी 'काशिकावृत्ति' में पाणिनि के शिव-सूत्रों की इस प्रकार से व्याख्या की है मानो इनकी रचना शैवागम तथा शाक्तागम के दिव्य रहस्य का उद्घाटन करने के उद्देश्य से ही हुई है। उदाहरण के लिये उन्होंने प्रथम सूत्र 'अइउण्' की निम्नलिखित प्रकार से व्याख्या की है-

'अ' निर्गुण ब्रह्म का वाचक है और 'उ' सगुण ब्रह्म का। जब 'अ' अर्थात् निर्गुण ब्रह्म 'इ' अर्थात् माया (चिच्छक्ति) के साथ संपर्क में आता है तब वह 'उ' अर्थात् सगुण ब्रह्म हो जाता है।

अइउण-

अकारो ब्रह्मरूपः स्यान्निर्गुणः सर्ववस्तुषु।
चित्कलामिं समाश्रित्य जगद्रूप उणीश्वरः।। (काशिका 2)

तन्त्रों में भी इसी प्रकार का सिद्धान्त वर्णित है। तान्त्रिक सिद्धान्तानुसार सृष्टि का विकास शिव-शक्ति के संयोग का परिणाम है। वर्णों की दिव्य शक्ति (मात्रिका वर्ण) को पहले-पहल तान्त्रिकों ने ही स्वीकार किया हो यह बात नहीं है। वैदिक काल में भी यह बात सिद्धान्तरूप से स्वीकार कर ली गयी थी। यही कारण है कि प्रणव (ॐकार) को वेदों ने साक्षात् ब्रह्म का स्वरूप माना है और उपनिष्दों में भी परब्रह्म के लिंगरूप में शब्दब्रह्म की उपासना का उपदेश दिया गया है।

(यह लेख शिवोपासनांक तथा संक्षिप्त भविष्य पुराणांक जो गीताप्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित हैं, पर आधारित है।)

❁❁❁❁❁❁

1. **नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।**
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्।।
(नन्दिकेश्वर, काशिका, शिवोपासनांक पृ. 148 पर उद्धृत)